International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 22-01-2022, Accepted: 05-02-2022, Published: 22-02-2022
Volume 8, Issue 1, 2022, Page No. 40-44

विद्याभूषण डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद का साहित्यः लोक जीवन का लालित्य

गीता अस्थाना
एसोसिएट प्रोफेसर व हिन्दी विभागाध्यक्ष, ज्वाला देवी विद्या मंदिर स्नातकोत्तर, महाविद्यालय आनन्द बाग, कानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
वर्तमान परिदृष्य में आम–जीवन किस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सास्कृतिक पृष्ठभूमि व परिवेष से समन्वय स्थापित कर विविध बिडम्बनाओं को आत्मसात कर संघर्ष के ताने–बाने में जीवन जीने के लिए विवश होता है, उसके प्रति संवेदनशील होना ही लोक जीवन की संपृक्ति है। डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद के साहित्य में व्यक्त लोक जीवन में लालित्य का प्राधान्य स्वाभाविक रूप से उनकी सौन्दर्यवादी चिन्तन दृष्टि का द्योतक है। आम–जीवन के संघर्ष के साथ–साथ जीवन के प्रति अदम्य साहस, दृढ़ आस्था एवं जीवन–जीने का आकर्षण ही एक ओर साहित्य सृजन कला को सौन्दर्य से आवेष्टित करती है तो दूसरी ओर उसे लालिव्य पूर्ण अलौकिक आनन्द में सराबोर कर 'सत्यं–शिवं–सुन्दरं' की परमानुभूति भी कराती है।

मूलशब्दः लोक जीवन, लालित्य की संपृक्ति, सौन्दर्यवादी चिन्तनदृष्टि।

प्रस्तावना
आधुनिक हिन्दी साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, ललित निबन्धकार, आधुनिक समीक्षक, सफल प्रशासक, कुशल अध्यापक होने के साथ एक सशक्त रचनाकार थे। बाबा विश्वनाथ की पवित्रतम व सांस्कृतिक नगरी काशी की साहित्यिक उर्वरा से सम्पन्न डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद की मेधा व साहित्यिक चेतना ने वास्तव में आज के राष्ट्रीय–साहित्यिक परिवेश में सच्चे अर्थों में 'विष्वनाथ' अर्थात् 'विश्व के नाथ' के पद को अभिशिक्त किया है, जिनके साहित्य सृजन की अभिशिक्त एक–एक बूँद से नित्य नव–चेतना का उदय होता रहेगा एवं डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद सदा–सदा साहित्य जगत में अपने यशः काया की अमर–बेलि से जन–जन को साहित्य कला कौशल व स्नेहाप्लावित संवेदना की शीतल छाँव प्रदान करते रहेंगे– ऐसा पूर्ण विष्वास है। काशी के साहित्यिक परिवार को, युवा लेखकों को अपनी ममता, करूणा, साहचर्य, बुद्धिमत्ता एवं सहयोग से 'सनाथ' करने वाले डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद सशक्त लेखनी सम्पन्न एक सफल रचनाकार, सूक्ष्म व विष्लेषक दृष्टि सम्पन्न साहित्य मर्मज्ञ, अनुशासन प्रिय व उदारचेता समीक्षक एवं संवेदनशील कवि के रूप में ख्याति प्राप्त हैं। अपने अल्पजीवन में अध्यापन के साथ–साथ डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद जी ने साहित्य की सभी विधाओं में अपनी लेखनी का लोहा मनवाया है। कविता लेखन के साथ साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले डॉ0 प्रसाद डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं0 विद्या निवास मिश्र, कुबेर नाथ राय की श्रेणी के ललित निबन्ध कारों में प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वही आलोचना के क्षेत्र में डॉ0 प्रसाद आधुनिक समीक्षकों में अपना सम्मानित स्थान सुरक्षित कर चुके हैं।

माँ सरस्वती के वरद् पुत्र डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद जी की रचनाएं उनके निरन्तर सृजनशीलता की परिचायक है, जिसमें मुख्य रूप से काव्य संग्रह– 'आवाज', (1985) 'रोशनी ही नदी की धारा', (1985) 'चुटकी भर अपनापन' (2002) 'जीवन के अनगिन दरवाजे' (2005) है। ललित निबन्ध संग्रह के अन्तर्गत– 'आम आदमी की लालटेन' (1990), 'चौरे का दीया' (2000), 'काल का ज्योति मुकुट' (2016), कहानी संग्रह– 'प्याज के छिलके (2014), उपन्यास– 'बीच की रेत' (2005) के अतिरिक्त समीक्षात्मक संग्रहों में – 'अष्टछाप के कवियों की सौन्दर्यानुभूति' (1989), 'सौन्दर्य और सौन्दर्यानुभूति' (1989), 'निबन्ध और निबन्ध' (2002), 'आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य' (2011) तथा 'गीत नवगीत' आदि हैं, जिसमें उनके कवि व्यक्तित्व की संवेदनशीलता, इतिहासकार की गूढ़–दृष्टि, निबन्धकार की विष्लेषणकारी गहरी पैठ, व्यंग्यकार की मस्ती, शोधवादी क्षमता के साथ–साथ नवीनता के प्रति गहरी आस्था एवं जीवन व जगत के प्रति सौन्दर्यानुभूति व लालित्यपूर्ण गहन चिन्तन दृष्टि विद्यमान है।

'लोक–जीवन' से तात्पर्य है 'सांसारिक जीवन' या 'सामान्य जीवन'। संसार में वैयक्तिक या सार्वजनिक जीवन किस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि व परिवेश से सामञ्जस्य स्थापित कर विविध विसंगतियों को आत्मसात कर संघर्ष के ताने–बाने में जीवन जीने के लिए बाध्य होता है, उसके प्रति संवेदनशील होना ही लोकजीवन की संपृक्ति है। डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद जी ने अपने साहित्य में लोक जीवन व वैयक्तिक जीवन की विविधताओं में भी जाने–अनजाने सौन्दर्य की तलाश की है। उनके संवेदनशील सघन अनुभूतियों के बीच कहीं न कहीं सौन्दर्यात्मक चिन्तन दृष्टि है, जो विपरीत परिस्थितियों एवं प्रतिकूल व्यवस्थाओं के बीच भी सामञ्जस्य स्थापित कर जीवन को तमाम बाधाओं से रहित अदम्य उल्लास, उत्साह व जीवनन्तता से परिपूरित करने की दृढ़ आस्था विद्यमान है। इसीलिए वह बार–बार कहते हैं– "कला का विकास जीवन के सहज वातावरण से होता है। जीवन से अलग रखकर कला को नहीं देखा जा सकता। परम्परागत संस्कृतियों के श्वास–प्रष्वास में कला समाहित है। कला का सम्बन्ध जीवन से है। यह जीवन के सहज वातावरण में विकसित होती है।"[1] ललित कलाओं को जीवन की परमावश्यकता माना गया है। जीवन का विकास

क्रम अपने साथ–साथ कलाओं को विकसित करता रहता है। परम्पराओं और मूल्यों से अनुप्राणित जीवन में लालित्य या कलात्मकता स्वतः स्फुरित होती है। आलोचक दिनकर कौशिक के अनुसार – 'कला का अस्तित्व घरों की दीवारों पर था, मन्दिरों में था, पांडुलिपियों और वस्त्रों पर था– उसका अस्तित्व व्यक्ति के जीवन में ताने–बाने में था, उसे जीवन का अंग माना जाता था।"[2] इस प्रकार साहित्य में व्यक्त लोक जीवन में लालित्य का प्राधान्य स्वाभाविक रूप से साहित्यकार डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद की सौन्दर्यवादी चिन्तन दृष्टि का परिचायक है। एक ओर जहाँ उनकी रचनाओं में आम जीवन का संघर्ष परिव्याप्त है, वहीं जीवन के प्रति अदम्य साहस, दृढ़ आस्था एवं आकर्षण विद्यमान है, जो साहित्य सृजन कला को 'सत्यं–शिवं–सुन्दरं' के अलौकिक आनन्द में सराबोर कर देता है।

डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद वास्तव में सफल व्यक्तित्व के धनी एक ऐसे बुद्धिजीवी थे, जिनके कार्य एवं व्यवहार में उनकी मौलिक चिन्तन शैली का प्रभाव परिलक्षित होता था। एक ओर जहाँ उनका व्यक्तित्व मानवीय मूल्यों से सम्पोषित था, वहीं जीवन की यर्थाथता, कठोरता एवं सामाजिक विडम्बनाओं से जूड़ने के लिए लोगों को प्रेरित करता रहता था। परिवार, समाज, महाविद्यालय के छात्र व आम जन सभी के प्रति अँजुली भर–भर स्नेह उलीचने वाले साहित्यकार डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद जब 'चुटकी भर अपनापन' की बात करते हैं तब उसके पीछे उनकी विराट सोच, उदार चिन्तन दृष्टि व्यक्त होती है। आज के वैष्विक परिदृश्य में बाजारवाद के प्रभाव से संयुक्त परिवार विलुप्त प्राय है, एकाकी परिवार–टूट रहे हैं, सम्बन्धों में दरारें पड़ रही हैं, दाम्पत्य जीवन दरक रहे हैं, तलाक के ऑकड़े बढ़ने के साथ ही असहाय वृद्धों व अनाथ बच्चों की कराहें सुनायी देती हैं– ऐसे में डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद जी 'चुटकी भर अपनेपन' को बचाने की बात करते हैं, जिसके सहारे जीवन की विभीशिका को पार कर पूर्ण संतुष्टि व आनन्द का अनुभव किया जा सकता है। वे कहते हैं–

जिन्दगी के कितने ही
शिकवे शिकायतों में
चिन्तातुर माथ झुका
सब कुछ तो सहा/दहा
मगर दहकर भी
शेष रहा/चुटकी भर अपनापन
इनसे उनसे
आया, सबसे जो मिला
जिन्दा रहने को
बस इतना ही काफी है।[3]

समाज का निर्धन, सर्वहारा व पिछड़ा वर्ग हमेशा से शासन व सत्ता के जागीरदारों द्वारा उपेक्षित रहा है, समाज के इस वर्ग की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए भी कवि उसमें निरन्तर लालित्य का समावेश करते दिखाई देते हैं–

इनके शासन में
निचली जमीन ही
मार खा रही
डूब रही है
या सूखे से
झुलस रही है
ये बादल
ऊँची बस्ती के
ऊँचे घर के
नहीं जानते उस जमीन को
जहाँ हमारी बस्ती
दिन में डूब रही है।[4]

'ऊँची बस्ती' व 'ऊँचे घर के बादल' के माध्यम से कवि उच्च वर्ग, धनाढ्य वर्ग पर व्यंग्य करते हैं किन्तु लाक्षणिक सौन्दर्य के साथ निम्न वर्ग के जीवन की विडम्बनाओं की मर्मान्तक अभिव्यक्ति हुई है।

जीवन की व्यस्ततम आपा–धापी के बीच मानव मन को प्राकृतिक सौन्दर्य भी रिझाने में असमर्थ प्रतीत हो रहे हैं। मानव जीवन यन्त्र वत होकर मात्र घसीट–घसीट कर एक–एक क्षण को निराषा व अवसाद में व्यतीत करता है फिर भी उसके मन के किसी कोने में सुख की स्फुरण उस चांदनी में 'जी भर छक कर' चांदनी स्नात होने की व्याकुलता है, जो उसके आशान्वित रहने का परिचायक है तथा लालित्य पूर्ण अभिव्यक्ति का द्योतक है–

बहुत दिन से
भागता
मैं थक गया हूँ
नर्मदा के रूप से
पर छक गया हूँ।
साखुओं के पात से
झिलमिल बरसती

चांदनी में
चाहता हूँ
ठहर जाऊँ
घर भुला कर
एक खटमिट्ठे
उमड़ते रूप में
जी भर नहाऊँ।।[5]

विद्याभूषण डॉ0 प्रसाद की रचनाओं में जहाँ प्रेम, सौन्दर्य पारिजात की तरह झर–झर झड़ता है, लोक संस्कृति कुलाचें भरती है, उनकी कोमल संवेदनाएं पाठक को हौले–हौले सहला कर उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति कराती हैं, वहीं दूसरी ओर समाज के शोषित पीड़ित, उपेक्षित वर्ग के प्रति उनकी सहज संवेदना चीत्कार करती यथार्थ को अभिव्यक्ति देने में तनिक भी संकोच नहीं करती। उनकी 'आवाज' सिर्फ बुद्धिजीवी वर्ग, साहित्य समाज के लिए ही नहीं बल्कि समाज के दबे–कुचले, विवशता की छटपटाहट से लाचार आमजन की आवाज बन जाती है–

यह आग ऐसी है जिसे कोई भी
ताकत वर हाथ नहीं बुझा सकता
इस आग के अनगिनत पाँव और हाथ होते हैं
यह बहुत तेज दौड़ती और पकड़ती है।
यह भूख की आग ही
धरती की पहली आग है
इसके साथ खेलने वालों
यह आग
तुम्हें कभी नहीं माफ करेगी।[6]

गरीबी व भूख–मरी की 'आग' वास्तव में शक्तिशाली शासन तन्त्र को भी भस्मकर पटलने की ताकत रखती है। आम जन की आवाज वास्तव में कवि की अभिव्यक्ति का वह शक्तिशाली ब्रहमास्त्र हैं जिसके माध्यम से वह समाज की संवेदनाओं को स्वर प्रदान कर सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के माध्यम से लोगों सचेत भी करता है–
यह तो एक चेतावनी है।

वैसे मर्जी आप की
लेकिन दोस्त
धार तो धार है
वह अपने और पराये को नहीं पहचानती है
आप की ही कातिल न बन जाय
यह भी एक चेतावनी है।[7]

आम–जन को अधिकारों के प्रति सजग व आगाह करते–करते कवि बार–बार 'धार' की 'तीक्ष्णता' की बात करते हैं। धार का पैना होना अत्यन्त आवश्यक है। जीवन में तीक्ष्णता, चमक अनिवार्य शर्त है जीने के लिए। यही कवि का सौन्दर्य बोध है। कष्ट के बीच सुख, विकटता के बीच सामञ्जस्य एवं प्रतिकूलता के बाद अनुकूलता का समन्वय करके ही जीवन को देदीष्यमान व तीक्ष्ण चमक से युक्त करना ही सौन्दर्य व 'लालित्य का पुट' देना है, जो कवि की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक एवं जीवन के सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। 'जीवन के अनगिन दरवाजे में' साहित्यकार डॉ0 प्रसाद जीवन की विविधताओं, उसके दायित्वबोधों, जीवन की मर्यादाओं के बीच भी बार–बार सन्तुलन स्थापित करते व उदार जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठापना करते दिखते हैं, जो जीवन व जगत के प्रति उनके पूर्ण आकर्षण का परिचायक है–

अब क्या है तनना
और क्या है बनना
इसी तनसे बनने के
बीच ही तो रहना
.....
तनना तेरे हिस्से
सहना मेरे हिस्से
अब तो है मुझको
इसी राह से गुजरना।।[8]

डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद कवि धूमिल के समकक्ष या उनसे भी आगे बढ़ कर आम–जन की पैरवी करते दिखते हैं। यद्यपि वे किसी वाद विशेष, वर्ग भेद या साहित्य परम्परा में विष्वास नहीं करते थे। उनका मौलिक चिन्तन स्वयं में विशिष्टता लिये हुए था। स्वतन्त्र, स्वच्छन्द तथा मौलिक लेखन शैली के लिए पहचाने जाने वाले डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद ने कविता के अतिरिक्त साहित्य की सभी विधाओं में अपनी लेखनी पूर्ण सिद्धहस्तता के साथ चलायी है चाहे ललित निबन्ध का क्षेत्र हो,

उपन्यासों का सर्जन हो या समीक्षात्मक ग्रंथों का सृजन कार्य। आज जब विष्ववाद की आंधी में राष्ट्र राग गुम हो रहा है, सम्बन्ध मिट रहे हैं, धरती बारूद की ढ़ेर पर टिकी है, अधिकांश रचनाकार प्रतिस्पर्धाओं के मकड़जाल में फँस सृजन कर रहे है, ऐसे कठिन समय में डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद अपने ललित निबन्धों– 'चौरे का दीया' और 'आम आदमी की लालटेन' के मद्धिम प्रकाश में 'राष्ट्र राग' की बात करते हैं, भ्रष्टाचार पर चिन्तित होते हैं और अपनी जड़ों में उसका निराकरण ढूँढते हैं–

"हजारों वर्षों से राष्ट्रीय धारा का जो अजस्त्र प्रवाह रहा है उसके अन्दर से यह सब कुछ निकला है। यही जीवन के इस पार का अमृत है। इस भीड़ में मैं उस अमृत घट को खोज रहा हूँ। दूसरे राष्ट्र भी अपनी जातीय धारा को मथकर अमृत का कुम्भ निकालते हैं, लेकिन ऐसा वे ही कर पाते हैं जिनकी अपनी स्वस्थ परम्पराएं हैं। जिनकी चेतना दुर्दमनीय है, जिनका लोक मन पवित्र है।"[9]

भारतीय संस्कृति और आर्यावर्त की सभ्यता की धारा माँ गंगा का नैसार्मिक स्वरूप डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद को लुभाता है। शिव की जटाओं में सुशोभित गंगा का कल–कल प्रवाह उन्हें एक पृथक संसार में पहुँचा देता है–

"गंगा बहुरूपा है और शिव सहस्त्रबाहु हैं। पावस की उन्माद गंगा, शरद की सांद्र गंगा, शिशिर की पारदर्शी गंगा, हेमन्त की मंथर गंगा, बसन्त की उल्लसित गंगा और ग्रीष्म की तन्वगी गंगा अपनी हजार–हजार तरंगों से महाभैरव के विक्षोम को शमित करके उसे शिव बना देती है। गंगा शिव को तरह–तरह से रिझाती है– कभी पियरी पहनकर, कभी रंग बिरंगी साड़ियों में दमक कर, कभी कुहरे में छिपकर, कभी सद्यःस्नाता की तरह अपने अंगों को गीली साड़ियों में समेट कर, कभी नाभि के आवर्त को दिखाकर, कभी रोलियों के बहाने भीगे के शों के बीच सिन्दूर की रसाद्रता को चटकाकर..... ।"[10]

उपरोक्त पंक्तियों में गंगा के मनोरम दृष्य में भी लालित्य का समावेश दिखाई देता है जो उसके जीवन दर्शन के साथ–साथ सौन्दर्य व लालित्य की अनुभूति कराता है। डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद मानव को पूरे विराट परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। संप्रेशण की आधुनिक और नवीन खोज उनके प्रत्येक निबन्ध में देखी जा सकती है। आम आदमी की लालटेन अपने जीवन के प्रकाश को भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाश बिखरने का साधन मानकर सर्वत्र ज्ञान का प्रचार–प्रसार करता है। 'चौरे का दीया' निबन्ध में व्यक्ति अपने जीवन की विडम्बम्बना, संत्रास व पीड़ा के बीच आस्था के दीपक के लालित्य का अनुभव करता है – "अँधेरा तो खुद मारक है। अँधेरे से व्यक्ति को मुक्त करने का एक ही उपाय है कि दीपक को खोजकर उसमें तेल भरा जाए। उसमें बाती डाली जाए। फिर उसको जलाया जाय। मुझे तो लगता है कि हमारी जातीय परम्परा ही दीपक है। लोक का मन बाती है। संवेदनाएँ उसमें भरा जाने वाला तेल है। आत्म–चेतना की लौ लगाकर उसे जलाना होगा। इसके बिना सारी कलाएँ अधूरी हैं। सारा ज्ञान निरर्थक है।[11]

'प्याज कि छिलके' कहानी संग्रह की सभी कहानियों मानवीय जीवन बोध, वैयक्तिक जीवन की लाचारी, लोक जीवन की पीड़ा व उसमें सौन्दर्यवादी चिन्तन दृष्टि के साथ–साथ जीवन लालित्य की तलाश, आस्थाओं की प्रतिबद्धता आदि को बड़ी बेबाकी से व्याख्यायित करती हैं, जो आम जीवन की लोक गाथा बन पाठक को अपने मन की मार्मिकता का एहसास कराती हैं– यही कहानीकार की सच्चे अर्थों में सार्थकता सिद्ध करती है। 'भीड़ का मारा आदमी' शीर्षक कहानी का अंश द्रष्टव्य है–

वह आदमी है और उसमें भी बुद्धिजीवी। वह कुत्तों की तरह किसी के पीछे दुम नहीं हिलाता। उसमें परिवर्तन करने की क्षमता है। फिर उसे अपने सोचने पर हँसी आ गयी। परिवर्तन क्या करेगा खाक! आजादी के साठ साल बीत गये परिवर्तन करते–करते। अभी हम आदमी को आदमी की तरह नहीं रखा पा रहे हैं।[12]

डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद ने अपने उपन्यास 'बीच की रेत' के माध्यम से आज की ज्वलन्त समस्या 'वृद्धावस्था, वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या एवं परिवार के उपेक्षित वृद्धों की मनोदशा को चित्रित कर 'वृद्ध विमर्श' पर केन्द्रित परिचर्चा की पृष्ठभूमि साहित्यकारों को प्रदान की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद का अपना एक विशिष्ट रचना संसार था। उनकी आवाज सिर्फ उनके लिए ही नहीं बल्कि समाज के दबे कुचले, छटपटाते लोगों की आवाज थी। उनके निबंध अपने भीतर की गलियों को तलाशते हुए पाठक को राजमार्ग पर पहुँचाते हैं, जब कि कवितायें सीधे–सीधे चौराहे पर खड़ी हो सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों को चुनौती देती हैं तथा जनता को विद्रोह के लिए ललकारती हैं। उनकी कविताएं जीवन के अर्थ को खोजते हुए भीतर के अत्यन्त सूक्ष्म की तलाश भी करती हैं। साथ ही आस–पास के वृहत्तर अर्थ को खोजते हुए आम आदमी को अपने से सीधे जोड़ने की सामर्थ्य से पूर्ण हैं। सौन्दर्यानुभूति एवं लालित्य की सघनता डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद के साहित्य का 'प्राण तत्व' है जो पाठक को आद्योपांत– जीवन्तता से जोड़े रखता है और पाठक अदम्य साहस सम्पन्नता के साथ जीवन व जगत से जुड़कर जीवन में कुछ कर गुजरने के लिए तत्पर दिखता है। उसकी यही छटपटाहट वास्तव में लेखक का श्रेय व प्रेय है। 'प्राचीन भारतीय मूल्यों–परम्पराओं व राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा हेतु तत्पर डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद निरन्तर एक ऐसे अमृत–घट की तलाश में संलग्न रहे, जिसका सौन्दर्य रस का पान कर भारतीय जन मानस सदा–सदा के लिए पूर्ण संपृक्ति का अनुभव कर सकेगा। इस प्रकार डॉ0 विष्वनाथ प्रसाद साहित्य जगत के लौहपुरूष हैं।[13] जिनकी साहित्यिक चेतना अनेकानेक रूपों में नये अंकुर बन प्रस्फुरित होगी व कालान्तर में वट–वृक्ष बन साहित्यिक जगत को सपृंक्त कर अपने लालित्य के माधुर्य में रसाप्लावित करती रहेगी। साथ ही उनका यह कहना 'वापस न जाऊँगा' पुनः पुनः उसकी सार्थकता को चरितार्थ करेगी–

यहाँ केवल अकेला मैं
न लौटूंगा जहाँ तक
आ गया हूँ
एक मुँह बाये
भविष्यत से
बड़ा पुरूषार्थ मेरा
चुनौती दे रहा

तूफान
तब वापस
न जाऊँगा।।[14]

सन्दर्भ सूची

1. प्रसाद, विश्वनाथ, (2002), निबन्ध और निबन्ध, संजय बुक सेन्टर, वाराणसी, पृ0 62
2. डॉ0 नगेन्द्र, (1973), हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृ0 116
3. प्रसाद, विश्वनाथ, (2002), चुटकी भर अपनापन, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, पृ0 14
4. प्रसाद, विश्वनाथ, (2002), चुटकी भर अपनापन, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, पृ0 12
5. प्रसाद, विश्वनाथ, (2002), चुटकी भर अपनापन, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, पृ0 126
6. प्रसाद, विश्वनाथ, (1985), आवाज, प्रभा प्रकाशन, प्रयागराज, पृ0 14
7. प्रसाद, विश्वनाथ, (1985), आवाज, प्रभा प्रकाशन, प्रयागराज, पृ0 43
8. प्रसाद, विश्वनाथ, (2005), जीवन के अनगिन दरवाजे, संजय बुक सेन्टर, वाराणसी, पृ0 05
9. प्रसाद, विश्वनाथ, (2000), चौरे का दीया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ026
10. प्रसाद, विश्वनाथ, (2016), काल का ज्योति मुकुट, मीरा प्रकाशन, प्रयागराज, पृ0 41
11. प्रसाद, विश्वनाथ (1990), आम आदमी की लालटेंन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 31
12. प्रसाद, विश्वनाथ (2014), प्याज के छिलके, साहित्य भण्डार, जीरो रोड, प्रयागराज, पृ0 29
13. कुंवर, देवी प्रसाद, (2002), साहित्य लौह पुरूष– डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद, उत्कर्ष प्रकाशन, मेरठ, पृ0 16
14. प्रसाद, विश्वनाथ (2002), चुटकी भर अपनापन, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, पृ0 52।